वर्ष ६
अंक ५
क्रमांक
६५

वैशाख
सं० १९८२
मई
सन १९२५

# वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक मासिक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल औंध ( जि सातारा )

## मातृभूमिका आदर।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि॥

अथर्व १२।१।२७

जिसमें वृक्ष और वनस्पतियां ( विश्व-हा ) सर्वदा ( ध्रुवाः ) स्थिर ( तिष्ठन्ति ) रहती है, उस ( विश्व-धायसं ) सबको धारण करनेवाली और स्वयं ( धृतां ) धारण हुई ( पृथिवीं ) भूमिका ( अच्छावदामसि ) मुख्यतासे हम वर्णन करते हैं।

अपनी मातृभूमिके विषयमें आदर व्यक्त करना हरएक मातृभूमिके भक्तका आवश्यक कर्तव्य है।

# यज्ञ का क्षेत्र ।

वैदिक धर्ममें "यज्ञसंस्था" प्रधानपद रखती है । वेदमें यज्ञके वर्णनपर जितने मंत्र हैं उतने किसी अन्य विषयके वर्णन के लिये नहीं आये हैं । इस कारण यज्ञ क्या है और उसका कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत है इसका विचार होना अत्यावश्यक है । इस बातका विचार इस लेखमें करनेका संकल्प किया है । भगवद्गीतामें जहां यज्ञका प्रकरण चला है वहां यह यज्ञ प्रजाओंके साथ उत्पन्न होनेका वर्णन है—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्व-मेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥
देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावय-न्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

भ. गीता अ. ३

"प्रारंभमें यज्ञके साथ साथ प्रजाको उत्पन्न करके ब्रह्माने उनसे कहा इस यज्ञके द्वारा तुम्हारी उन्नति हो, यह यज्ञ मनोवांछित फल देनेवाला तुम्हारे लिये होवे । तुम इस यज्ञसे देवताओं को संतुष्ट करते रहो और वे देवता तुम्हें संतुष्ट करते रहें । इस प्रकार परस्पर एकदूसरेको संतुष्ट करते हुए दोनों परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त कर लो ।

इसमें स्पष्ट बताया है कि ( १ ) यज्ञ प्रजाके साथ उत्पन्न हुआ है, ( २ ) यज्ञमें देवताओं और मनुष्योंका घनिष्ट संबंध होता है, ( ३ ) और परस्परकी सहायता परस्परको प्राप्त होकर उन्नति होती है ।

"अदेव" जो है वे "देवों" की सहायतासे अपनी उन्नति कर सकते हैं । इसीलिये "अदेवों" को आवश्यक होता है कि वे देवोंकी पूजा करें, देवोंके साथ संगति करें और देवोंके लिये आत्मसमर्पण करें । यज्ञ शब्दका भी यही अर्थ है। अस्तु । उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि यज्ञ उतना प्राचीन है कि जितनी मनुष्यजाति प्राचीन है । मनुष्यका जीवन ही यज्ञमें होता है और उन्नति भी उसीसे होती है । यज्ञ मनुष्यके साथ उत्पन्न हुआ है और वह उसके साथ

सदा रहता है, जो मनुष्य यज्ञको ठीक प्रकार करता है, उसकी उन्नति और जो ठीक प्रकार नहीं करता उसकी अवनति होती है।

**यज्ञमें ब्रह्म।**

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।

भ. गीता. ३। १५

"सर्वव्यापक ब्रह्म यज्ञ में नित्य रहता है।" यह सर्वव्यापक ब्रह्मका प्रतिष्ठान जो यज्ञमें है, वह हर एक को देखना चाहिये। यज्ञकी सिद्धता उत्तम रीतिसे प्राप्त होनेके लिये इस ज्ञानकी विशेष ही आवश्यकता है। इस ज्ञानके विना यज्ञकी फल प्राप्ति पूर्णतासे नहीं हो सकती। यज्ञसे कर्मके बंधका नाश होता है इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखिये—

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ २३॥

भ. गीता ४

"आसक्ति रहित, रागद्वेषसे मुक्त, ज्ञानमें स्थित, और यज्ञके लिये ही जो कर्म करते हैं उनका सब कर्म विलीन होजाता है, अर्थात् कर्मकी बाधा उनको नहीं होती।" परंतु यह कर्मबन्ध तब छूट सकता है कि जब यजमान निष्कामभाव से युक्त हो, रागद्वेष उसमें न हो ज्ञानमें ही चित्तको स्थिर करनेवाला हो, और केवल यज्ञके लिये ही कर्म करे। आज कल जो यज्ञ कर्म होते हैं वे स्वर्ग कामना, सुख की इच्छा आदिके कारण होते हैं और इस वचनके अन्य भाव भी याजकों में नहीं होते, इस लिये ये यज्ञ कर्म कर्मकर्ताको अवश्य बाधक होते हैं।

**ब्रह्म भावनासे यज्ञ।**

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥

भ. गीता. अ. ४

"अर्पण अथवा हवन क्रिया ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है, ब्रह्म रूप अग्निमें हवन किया जाता है और ब्रह्म ही हवन कर्ता है। इस प्रकार जिसकी बुद्धिमें सभी कर्म ब्रह्मरूप हो जाते हैं वह ब्रह्मको ही प्राप्त होता है।"

इसका तात्पर्य यह है कि सर्वत्र ब्रह्मका चमत्कार जो अनुभवता है वही यह भावना मनमें धारण करके यज्ञ कर सकता है। अन्योंसे यह ब्रह्मयज्ञ नहीं हो सकता। ब्रह्मयज्ञ ही सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ यज्ञ है और वह करनेके लिये उक्त प्रकार भावना यज्ञ कर्ताके मनमें स्थिर होनी आवश्यक है। यही भाव अन्य रीतिसे निम्न श्लोकमें बताया है।

**सर्वात्मभाव से यज्ञ।**

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्। मंत्रोऽहमहमेवाऽऽज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ १६॥

" क्रतु मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मैं हूं, मंत्र, घी, अग्नि और हवन भी मैं ही हूं। "

भ. गीता. ९

पूर्व श्लोकमें "ब्रह्म" शब्द का प्रयोग है और इस श्लोकमें " अहं " अर्थात् " मैं " शब्दका प्रयोग है। ब्रह्मशब्द व्यापक आत्माका वाचक है और "अहं" शब्द देहमें कार्य करनेवाले आत्मा क वाचक है। भगवद्गीताको अभीष्ट है कि दोनों दृष्टियोंसे यज्ञका स्वरूप ऐसा आत्ममय होना चाहिये। ब्रह्मदृष्टि हरएक के समझमें और अनुभवमें नहीं आसकती, परंतु " अहं " दृष्टिसे देखना हरएक के समझमें आसकता है। योगीराज श्रीकृष्ण कहते है कि यज्ञके संपूर्ण पदार्थ "मैं हूं" इस भावनासे देखें कि इस दिव्य दृष्टिसे क्या फल निकलता है। इसका प्रयोग ऐसा है—

"यह सोमयाग मैं हूं, इस में प्रयुक्त होनेवाली हवन सामग्री, औषधियां, समिधाएं सब मैं हूं, सब ऋत्विज मैं हूं, यज्ञ कुंडका अग्नि मैं हूं, घी आदि पदार्थ भी मैं हूं। यज्ञीय पशु भी मैं हूं। "

पाठक यही भगवद्गीता की भावना मनमें क्षणमात्र धारण करें और उसीपर विचार करें कि इस भावना का परिणाम क्या होगा। यह " सर्वात्मभाव" की भावना है। यह भावना मनमें आतेही "कौन किसको वधे मरेगा?" यज्ञिय पशुकी आत्मा और मेरी आत्मा समान या एक है, "मैं ही वह पशु हूं' यह भावना जिस समय मनमें स्थिर होगी उस समय "पशुका वध" करना "आत्मघात" करनेके समान ही होगा और इसी कारण इस भावनाके पश्चात् यज्ञमें पशुवध असंभव होता है। जिन जिन महा पुरुषोंने पशुहीन यज्ञ किये थे, जैसा कि महाभारत में वर्णन है, वे इस भावनासेही किये थे।

"पशुका आत्मा अपने आत्मा के समान ही है " यह भाव उत्पन्न करके श्रीमद्भगवद्गीता यजमानको पशुवधसे निवृत्त कर रही है। यह युक्ति पाठक अवश्य देखें। पूर्वोक्त दोनों वचनोंका फलित यही है। भगवद्गीताका उद्देश्य यहां स्पष्ट हो रहा है। व्यापक ब्रह्मभाव अथवा व्यापक अहंभाव ( आत्मभाव ) अर्थात् "सर्वत्र आत्मवत् भाव रखना" यज्ञ प्रक्रियामें कितना क्रांतिकारक है इसका यहां पाठक विचार कर सकते हैं। सौ शास्त्रार्थ जो कार्य कर नहीं सकते वह कार्य श्री. भगवद्गीताके सर्वात्मभावके उपदेशसेही सिद्ध किया गया है। हरएक यज्ञकर्ता इसका मनन करे।

### दैवी संपत्तिका यज्ञ।

भगवद्गीतामें दैवी संपत्तिका वर्णन है उसमें यज्ञ का परिगणन है देखिये—

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥ अहिंसा सत्यमक्रो-

धस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥ दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥३॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता । भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥४॥

" दैवी संपत्तिमें .. दम, यज्ञ, अहिंसा, भूतदया, निर्लोभवृत्ति शुद्धता " ये गुण हैं । (भ. गी. १६)

कौनसा यज्ञ दैवीसंपत्तिमें आता है इसका इन गुणों के साहचर्य से पता लग सकता है ( १ )इंद्रियसंयम ( २ )अहिंसा ( ३ ) भूतदया, ( ४ ) निर्लोभवृत्ति,(५) शुद्धता ये गुण जिसके साथ रहते है वह यज्ञ दैवीसंपात्तिमें आता है, इसके विरुद्ध आसुरि संपत्तिका यज्ञ हैं जिसमें ( १ ) विषयी इंद्रिय वृत्ति,(२) हिंसा, (३) भूतदयाका अभाव , ( ४ ) लोभ , ( ५ ) मलीनता ये गुण होते हैं । दोखिये—

( १ ) दैवी संपत्तिका यज्ञ = इसमें यजमान इंद्रिय संयम करेगा, अहिसा, भूतदया आदि भावोंके साथ वह दूसरोंके साथ व्यवहार करेगा, लोभको छोडेगा और पवित्रता रखेगा ।

( २ ) आसुरी संपत्तिका यज्ञ— इसमें यजमान इंद्रिय दमन नहीं करता, भूतदया छोडकर अन्योंकी हिंसा करता है, स्वर्गादिका लोभ धारण करता है, तथा पशु मांस रक्तादिका संबंध होनेसे अपवित्र भी रहता है ।

अब भगवद्गीताकी दृष्टिसे इन दो यज्ञों का फल भी यहां देखिये—

दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायाऽऽसुरी मता ॥ भ. गीता. १६ ५

" दैवी संपत्तिसे मोक्ष व आसुरी संपत्तिसे बंधन होता है । "

अर्थात् हिंसारहित धान्यहवन करनेसे दैवी सपत्तिका यज्ञ होकर वह मोक्षतक पहुंच सकता है। परंतु आग्रहसे पशुहिंसा करके यज्ञ करनेसे वह आसुरी संपत्तिका कर्म होनेके कारण वह यजमान को बंधन कारक होता है । पशुयज्ञ करनेवाले इसका अवश्य विचार करें । भगवद्गीता यज्ञ करनेकाही उपदेश कर रही है, यज्ञ संस्थाका खंडन नहीं करती, यह देखने के लिये निम्न श्लोक देखिये–

अवश्यकर्तव्य ।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥ एतान्यपि तु कौंतेय संगं त्यक्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

भ. गी. १८

"यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये, इनको करना ही चाहिये । बुद्धिमानो को ये यज्ञ दान तप पावन करते है । इस लिये इन कर्मोंको विना आसक्ति, फलोंका त्याग करके करते रहना चाहिये । "

यह गीताका उपदेश योग्य ही है ।

परंतु जो यज्ञ करना चाहिये वह हिंसा रहित दैविसंपत्तिवाला यज्ञ होना चाहिये, इस विषयकी स्पष्ट आज्ञा पहिले आचुकी है। अब स्वर्ग चाहने वाले लोग पशुयागादि हिंसा प्रधान कर्म जो करते हैं उनकी निम्न प्रकार निंदा भगवान् करते हैं-

आवागमन का भय ।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

भ. गीता ९.

" तीन विद्याओंके जानने वाले, सोम पान करने वाले, यज्ञ करके स्वर्गकी इच्छा करते है। वे स्वर्गके भोगको भोगते हैं। पुण्य क्षीण होनेके पश्चात् फिर जन्म लेकर मृत्युलोकमें आते हैं। इसप्रकार इनको वारंवार आवागमन भोगना पडता है। "

इन श्लोकोंका यह तात्पर्य है, स्वर्ग भोगनेकी इच्छासे जो पशुयागादि कर्म किये जाते हैं, उनका परिणाम आवागमन में अर्थात् यातनामें ही होता है। इससे यह सिद्ध है कि यजमान पूर्वोक्त दैवी संपत्तिवाला अहिंसा मय यज्ञ करके मोक्षका भागी बने और हिंसाप्रधान यज्ञ करके आवागमनमें न फसे। इतने वर्णनसे यह स्पष्टही सिद्ध होता है कि यज्ञ अनेक हैं दैवीसंपत्तिवाले यज्ञ मोक्ष देनेवाले और आसुरी संपत्तिके यज्ञ बंधन करने वाले होते हैं यह ऊपर बताया; अब अन्यान्य यज्ञोंका भी विचार करना चाहिये। इसका विचार करनेके लिये निम्न लिखित श्लोक देखिये—

अनेक यज्ञ ।

दैवमेवाऽपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥ श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति। शब्दादीन्विषयानन्य इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥ सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥ अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥ अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति। सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥ यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥ नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥ एवं

बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥ ३२ ॥ श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥ ३३ ॥

भ. गीता अ. ४

इन श्लोकोंमें जिन यज्ञोंका वर्णन आया है वे ये यज्ञ हैं —

( १ ) योगियोंका दैवयज्ञ = इस यज्ञमें अग्नि सूर्य आदि देवताओं के साथ अपने वाक् चक्षु आदिका संबंध अनुभव करके दैवी शक्तिके द्वारा अपनी शक्तियोंकी उन्नति करनेका योगानुष्ठान करना होता है।

( २ ) ब्रह्मयज्ञ = ब्रह्माग्निमें यज्ञ का यज्ञ करना होता है। ज्ञानाग्निमें कर्मका हवन, अर्थात ज्ञानाग्निसे सब कर्मोंका भस्म करना। इसीका नाम ज्ञानयज्ञभी है।

( ३ ) संयमयज्ञ = संयम रूप अग्नि में श्रोत्रादि इंद्रियों का हवन। इंद्रियों का संयम करना और भोग बढानेकी इच्छा कम करनी।

( ४ ) इंद्रिय यज्ञ = शब्दादि विषयों का अर्पण योग्य मर्यादा तक इंद्रियोंमें करना अर्थात् जितना भोगनेसे हानि नहीं होगी उस मर्यादा तक विषय भोग भोगकर आत्म उन्नतिका साधन करना।

( ५ ) आत्म संयम योग यज्ञ = आत्म संयम के योगाग्निमें इंद्रियों और प्राणोंके कर्मोंका हवन। अर्थात् संपूर्ण कर्मोंका संयम करना।

( ६ ) द्रव्य यज्ञ = द्रव्यका परोपकार के शुभ कार्योंमें सद्व्यय करना।

( ७ ) तपोयज्ञ = शीत उष्णादि द्वंद्व सहन करनेका अभ्यास बढाना।

( ८ ) योगयज्ञ = योगसाधनके सब प्रकार इसमें आते हैं। योगसाधन द्वारा आत्मोन्नति।

( ९ ) स्वाध्याय यज्ञ = अपना अभ्यास करना, सत्य विद्याके ग्रंथोंका अध्ययन तथा अध्यापन करना।

( १० ) ज्ञान यज्ञ = ज्ञान प्राप्त करना, और उसका उपदेश करना।

( ११ ) अपान यज्ञ = अपानमें प्राणका यज्ञ।

( १२ ) प्राण यज्ञ = प्राणमें अपान का अर्पण।

(१३) कुंभक यज्ञ = प्राण और अपान की गति स्तब्ध करके केवल कुंभक का अभ्यास बढाना।

( १४ ) प्राणाग्नि होत्र = आहार का नियम करके प्राणोंका प्राणमें अर्पण। ये सब प्राण यज्ञ योग शास्त्रसे संबंध रखते हैं।

" इन यज्ञो से पाप दूर होते और ब्रह्म प्राप्ति होती है। यज्ञके विना इस लोकमें उन्नति नहीं हो सकती फिर परलोकमें सद्गति कैसी हो सकती है। इस प्रकार अनेक यज्ञ है, परंतु द्रव्य यज्ञसे ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ है। "

इस प्रकार अनेक यज्ञोंका वर्णन भग-

वद्गीतामें कहा है, परंतु किसी स्थानपर पशुवध करके उसके मांसका हवन करने का उल्लेख तक नहीं है। हिंसामय यज्ञों से अधोगति होनेकी सूचना दी है,परतु उन यज्ञोंका नामनिर्देश भी नहीं किया है। इसका तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता हिंसामय यज्ञोंको सर्वथा तिरस्करणीय समझती है और इसीलिये उसके वाचक शब्दोंका उच्चारतक नहीं करती। जहां सबसे श्रेष्ठ यज्ञके वर्णन का प्रसंग आगया है वहां भगवान् कृष्ण ने कहा है--

**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥**

भ. गीता १०। २५

"यज्ञों में मैं जपयज्ञ हूं।" ओंकारादि मंत्रोंका जप करना यह जपयज्ञ है और यही यज्ञ संपूर्ण यज्ञोंमें श्रेष्ठ है। विभूतियोगमें यह वाक्य है, यदि परमेश्वर की विभूति किसी यज्ञमें प्रकट हो सकती है तो विशेष कर जपयज्ञमें ही हो सकती है। पशुका घात पात करके जो यज्ञ होता है उसमें दयाका अभाव होनेके कारण उसमें परमेश्वर की विभूति प्रकट नहीं हो सकती। यह वाक्य इस दृष्टीसे अत्यंत महत्त्व रखता है।

इस रीतिसे श्रीमद्भगवद्गीताके यज्ञ विचारोंका निरीक्षण किया, जिससे स्पष्ट होगया है कि जिसमें भूत दया, अहिंसा, पवित्रता, संयम आदि हैं, वह दैवीसंपत्तिवाला यज्ञ ही करना मनुष्यके लिये हित कारक तथा उन्नति कारक है। जिस में भूतदया नहीं और हिंसा प्रधान है वैसा आसुरी संपत्तिका यज्ञ करना मनुष्य की अधोगति करनेका हेतु है, इस लिये ये आसुरी यज्ञ करना किसी को भी योग्य नहीं है।

## उपनिषद् में यज्ञका वर्णन।

यहांतक हमने भगवद्गीताका आशय देखा, अब भगवद्गीता जिस आधारपर बनी है उन उपनिषदोंमे यज्ञकी कल्पना किस ढंगसे वर्णन की है यह यहां देखना चाहिये। सब से पहिले मुंडक उपनिषद् का वचन हमारे सन्मुख आता है जिसमें इस यज्ञ कर्मकी कंठरवसे निंदा हो की है। देखिये-

### हीन कर्म।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनंदन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ ७ ॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितंमन्यमानाः। जंघन्यमानाः परियान्ति मूढा अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥ अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभि मन्यन्ति बालाः। यत्कर्मिणो न प्रवेदयान्ति रागाचेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ ॥

मुंडक उप. १।२

" जिसमें अठारह ऋत्विजोंका ( अवरं कर्म ) हीन कर्म है वह यज्ञ रूप नौका दृढ नही है अर्थात् उससे मनुष्य पार नहीं हो सकता । इसी को जो मूढ लोग श्रेय अर्थात् कल्याण कारक समझते हैं, वे वारंवार मृत्युके ही आधीन होते है । स्वयं अविद्यामें रहते हुए भी जो अपने आपको बडे पंडित और ज्ञानी समझते हैं वे मूढ अंधेके पीछेसे चलने वालो के समान गिरते ही जाते हैं । अविद्यामें रहते हुए भी बाल अर्थात् मूढ लोग अपने आपको कृतार्थ समझते हैं, परंतु वे अंतमें दुःखी होकर हीन अवस्थामें गिरते हैं । "

पशुबंधादि यज्ञयाग करने वालोंका यह उपनिषद् में किया हुआ वर्णन हरएक यज्ञकर्ताको देखना चाहिये। इस वर्णन में-

मूढाः = मूर्ख,
अविद्यायां वर्तमानाः = अविद्यामें रहने वाले,
पंडितंमन्यमानाः = पंडिताईकी घमंड करनेवाले,
अंधेन नीयमानाः अंधाः = अंधेके पीछे जाने वाले अंधे,
बालाः = बालक, मूर्ख,

ये शब्द कितने सख्त हैं, इसका पाठक ही विचार करें । इस प्रकार कठोर शब्द आजकल कोई प्रयुक्त भी नहीं करता, ऐसे कठोर शब्दों द्वारा उपनिषद्कार इनकी निंदा करते हैं । इनके पशुबंधादि यज्ञ कर्मोंकी भी कम निंदा नहीं की है, देखिये-

यज्ञरूपाः अदृढाः प्लवाः = यज्ञ रूप नौका सुदृढ नहीं है। टूटा हुआ बेडा.
अवरं कर्म = हीन कर्म,
अविद्या = अज्ञानमय कर्म,

ये भी शब्द बडे कठोर हैं। उपनिषद्कार इतने कठोर शब्दोंसे इस पशुबंधादि यागोंका खंडन करते हैं । इसको देखने से स्पष्ट पता लगता है कि उपनिषत्कार इनके बडे भारी विरोधी हैं । इस प्रकार पशुबंध यज्ञका खंडन करते हुए उपनिषत्कार बताते हैं कि यज्ञकर्ता ऋत्विजलोग कैसे होने चाहिये-

देवताका ज्ञान ।

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥ उद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १० ॥ प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ११ ॥

छांदोग्य उ० १। १०

" हे प्रस्तोता, हे उद्गाता तथा हे प्रतिहर्ता ! जिन देवताओंका स्तवन तुम करते हो, उन देवताओंके स्वरूपको न जानते हुए यदि तुम अपना कर्म करोगे, तो तुम्हारा मस्तक टूट जायगा । "

इसका तात्पर्य यह है कि यज्ञमें जो ऋत्विज होते हैं उनको उचित है कि वे यज्ञीय देवताओंका ठीक प्रकार स्वरूप विज्ञान प्राप्त करें और पश्चात् यज्ञका अनुष्ठान करें। उस देवतास्वरूप विज्ञान के बिना किया हुआ अनुष्ठान यज्ञकर्ताओंकी हानि करता है। यह यज्ञशास्त्रका तत्त्व है। यह तत्व आजकल कितने लोग जानते हैं? और यदि नहीं जानते तो उन के यज्ञ से निःसंदेह लाभ होगा इस विषयमें प्रमाण क्या है?

## जगत्की शक्तिसे आत्म-शक्तिका उद्धार।

योग साधनमें एक आत्मोन्नतिका यह विधि है कि जिसमें अपने शरीरके अंतर्गत शक्तियोंका संबंध बाह्य देवताओंके साथ देखना, जानना, और अनुभव करना होता है और बाह्य देवता शक्ति से अपनी इंद्रिय शक्तिकी वृद्धि करनी होती है। यही विषय पूर्वोक्त छांदोग्य उपनिषद् के वचन में कहा है, यज्ञविधि में भी इसी ज्ञानकी अत्यंत आवश्यकता है। इस ज्ञानके विना किया हुआ यज्ञ सफल और सुफल नहीं हो सकता। इस प्रकारके देवता ज्ञानसे ज्ञानी बने हुए ऋत्विज जहां होते हैं वह यज्ञ पवित्रता करनेवाला होता है इसविषयमें उपनिषद् कहता है—

आसां देवतानामस्यासत्र्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति। भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति॥

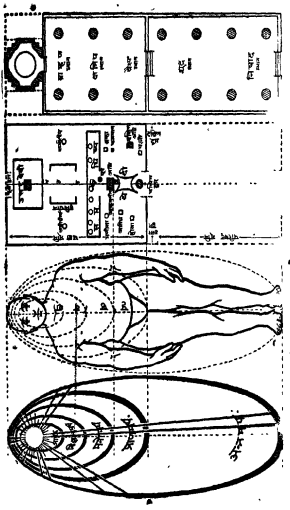
छांदोग्य उप. ४।१७।८

"इन देवताओंके और त्रयीविद्या-के वीर्य से यज्ञका दोष दूर होता है। जिस यज्ञमें ऐसा ज्ञानी ब्रह्मा होता है वह यज्ञ औषधरूप होता है।" अर्थात् जिस प्रकार औषधियां शरीरके दोषोंको दूर करती हैं, उसी प्रकार ऐसे ज्ञानी ऋत्विजों से किये हुए यज्ञ संपूर्ण दोषोंको दूर करते हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि यदि ऋत्विज इसप्रकार ज्ञानी नहीं होंगे तो वे यज्ञ विविध दोषोंसे दूषित होनेमें कोई शंकाही नहीं हो सकती। अतः इस विषयमें यज्ञ कर्ता को सावधान होना चाहिये।

## स्वशरीरमें यज्ञका अनुभव।

उपनिषत्कारोंके मतसे यह बाह्य यज्ञ केवल इसी लिये है कि आंतरिक यज्ञ की बात उपासकोंके मनमें स्थिर होजाय। उपनिषत्कार सब पाठकोंका मन आंतरिक आत्मयज्ञ की ओर आकर्षित करना चाहते हैं देखिये—

स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामीति। तत्र सूर्योऽग्निः ' ' एक ऋषिर्भूत्वा मूर्धनि तिष्ठति॥ '' दर्शनाग्निर्नाम चतुराकृतिराहवनीयो भूत्वा मुखे तिष्ठति। शारीरोऽग्निर्नाम जराप्रणुदा हविरवस्कंदति '' दक्षिणाग्निर्भूत्वा हृदये तिष्ठति तत्र कोष्ठाग्निरिति।



यज्ञपुरुष, मुख्य आंतारक यज्ञ और उस सत्य यज्ञका बाह्य स्वरूप।

गार्हपत्यो भूत्वा नाभ्यां तिष्ठति ।
· ...प्रजननकर्मा।

प्राणाग्निहोत्र २

" अपने शरीरमें यज्ञका परिवर्तन करता हूं। वहां सूर्याग्नि सिरमें रहता है ।आहवनीयाग्नि मुखमें रहता है। शारीराग्नि अन्न खाता है.. वह दक्षिणाग्नि हो कर हृदयमें रहता है उसीको कोष्ठाग्नि कहते हैं। . यह गार्हपत्याग्नि बन कर नाभिमें रहता है...यह संतान उत्पत्ति करता है ।"

पाठक विचार करें कि यह कथन कितना भावपूर्ण है । यज्ञके सच्चे स्वरूप का पता यहां लगता है । बाहेर के यज्ञ जिस कार्यके लिये किये जाते हैं वह कार्य यही है जो कि अपने शरीरमें हो रहा है । शरीरमें क्या होता है वह किसी कोभी पता नहीं है, वह बतानेके लिये ही ये यज्ञ बाहर बनाये जाते हैं

अब आप बाह्य यज्ञ व आंतरिक यज्ञ का तत्त्व समझने के लिये यह चित्र (पृ. १४७ पर )देखिये-

इस चित्रसे आपको प्रचलित यज्ञ शाला की कल्पना होगी। और यही यज्ञ शाला अपने शरीरमें किस पद्धतिसे देखनी चाहिये इसका भी ज्ञान इसी चित्रसे आपको होगा। शरीरके पंचकोश और यज्ञ का क्या और कैसा संबंध है,यज्ञशाला के अग्नि अपने शरीर के अग्नियोंसे किस प्रकार संबंधित हैं, यह सब आपको इस चित्रसे पता लग जायगा। अब इसका विशेष विचार करनेके लिये पहिले उपनिषद् के वाक्य यहां दिये जाते हैं—

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनम् ॥ अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनं सवनं. .. ॥ अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तृतीय· सवनं .. ॥ छांदोग्य उ. ३।१६।१

" मनुष्य ही एक यज्ञ है। उसकी आयु के पहिले चोवीस वर्ष प्रातः सवन, उसके पश्चात् के चवालीस वर्ष माध्यंदिन सवन और अंतिम अठतालीस वर्ष तृतीय किंवा सायंसवन होता है । "

जिस प्रकार दिनके १२ घंटो में प्रातः कालमें प्रातःसवन, मध्यंदिन के समय माध्यंदिनसवन और सायंकालमें सायंसवन किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यकी पूर्ण आयु यह एक पूर्णदिन मान कर ही उक्तविभाग माने गये हैं—

२४ वर्ष = प्रातः सवन = प्रातः काल
४४ " = मध्यंदिन " = मध्यादिन "
४८ " = सायं = " सायं "
११६ कुल आयु एकसौ सोलह वर्ष-
- की हुई।

मनुष्यकी पूर्ण आयु ११६वर्षकी मान कर यह विभाग किया गया है । मनुष्य की पूर्ण आयु एक महायज्ञ है, यह कल्पना इस वर्णन में व्यक्त हो गयी

है, पाठक इसका योग्य विचार करें। तथा—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य-
मेव तत् ॥　　छांदोग्य उ०८।५।१

" जो यज्ञ कहा जाता है वह ब्रह्मचर्य ही है।" अर्थात् ( ब्रह्म ) ज्ञान प्राप्तिके लिये ( चर्य ) व्यवहार करनेका नाम ब्रह्मचर्य है और यही सच्चा यज्ञ है। यही आयुभर चलाया जा सकता है। बालपनसे अंतिम समयतक मनुष्य अपनी सब आयु ज्ञानार्जनमें लगा सकता है, और ब्रह्मचर्यका पालन करने द्वारा अपना उद्धार कर सकता है। यही आयुभरके यज्ञका संक्षेपसे तात्पर्य है। अब अपने शरीरमें यह यज्ञ कैसा देखना चाहिये इस विषयमें उपनिषद् के वचन देखिये—

वाग्वै यज्ञस्य होता ।
चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युः ।
प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता ।
मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा ।
बृहदारण्यक उ० ३।१।३-६

" वाणी, चक्षु, प्राण और मन ये क्रमशः यज्ञके होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा हैं।"

यह सूचना दी है कि यज्ञ को अपने शरीरमें सब रूपमें किस रीतिसे देखना और अनुभव करना। तथा इसी विषयमें देखिये—

शरीरमिति कस्मात्। अग्नयो ह्यत्र श्रियन्ते ज्ञानाग्निर्दर्शनाग्निः कोष्ठाग्निरिति।.. मुखे आहवनीय उदरे गार्हपत्यो हृदि दक्षिणाग्निः। आत्मा यजमानो, मनो ब्रह्मा, लोभादयः पशवो, धृतिर्दीक्षा संतोषश्च, बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि, हवींषि कर्मेंद्रियाणि, शिरः कपालं, केशा दर्भाः, मुखमंतर्वेदि. ॥५॥

गर्भोपनिषद्।

यही बात विस्तारसे प्राणाग्निहोत्र उपनिषद् में कही है —

अस्य शारीरयज्ञस्य आत्मा यजमानः। बुद्धिः पत्नी।... अहंकारोऽध्वर्युः। चित्तं होता। प्राणो ब्राह्मणाच्छंसी। अपानः प्रतिप्रस्थाता। व्यानः प्रस्तोता। उदान उद्गाता। समानो मैत्रावरुणः। शरीरं वेदिः। नासिकोत्तरवेदिः।... ओंकारो यूपः। आशा रशना। मनो रथः। कामः पशुः। केशा दर्भाः। बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि। कर्मेंद्रियाणि हवींषि। अहिंसा इष्टयः। त्यागो दक्षिणा। अवभृथं मरणात्। सर्वा ह्यस्मिन्देवता शरीरेऽधि समाहिताः।

प्राणाग्निहोत्र. ४

यही वर्णन कुछ भेदसे महानारायणोपनिषद् में आया है—

यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हि-

वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आ-
ज्यं मन्युःपशुस्तपोऽग्निर्दमःशमयि
ता दक्षिणा वाग्घोता प्राण उद्गा-
ता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रम-
ग्नीधावद्ध्रियते सा दीक्षा,यदश्ना
ति तद्धविर्यत्पिबति तदस्य सोम
पानं ० ॥ ८० ॥

म. नारायणोपनिषद

इन सब प्रमाणोंका तात्पर्य यह है कि—

१यज्ञ = मनुष्य,
२ यज्ञ मंडप = मनुष्य शरीर,
३ यज्ञका समय = आयुसमाप्तितक
४ अग्नि
आहवनीयाग्नि = मुख
गार्हपत्याग्नि = कोष्ट, पेट
दक्षिणाग्नि = हृदय
५ यजमान = आत्मा
६ यजमानपत्नी = बुद्धि, श्रद्धा
७ ब्रह्मा = मन
८ अध्वर्यु = अहंकार, चक्षु
९ होता = चित्त , वाक्
१० ब्राह्मणाच्छंसी = प्राण
११ प्रतिप्रस्थाता = अपान
१२ प्रस्तोता = व्यान
१३ उद्गाता = उदान,
१४ शमिता = दम, संयम
१५ मैत्रावरुण = समान
१६ पशु = लोभादि, काम, क्रोध.
१७ यज्ञपात्र = ज्ञानेंद्रियां
१८हविर्द्रव्य = कर्मेंद्रियां, अन्न भक्ष्य
१९ इष्टि = अहिंसा
२० सोमरस — जलपान
२१ दर्भ = बल, केश
२२ वेदि = हृदय
२३ देवता = शरीरमें प्रत्यक्ष देवता एं रहती हैं ।

शेष पाठक जान सकते हैं । यह यज्ञ प्रत्यक्ष है । इसीमें देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभव है । जैसा कि पूर्व उपनिषद् वाक्यमें कहा है कि इस शरीरमें सब देवताएं रहती हैं, ठीक यही बात वेदमें भी कही है देखिये—

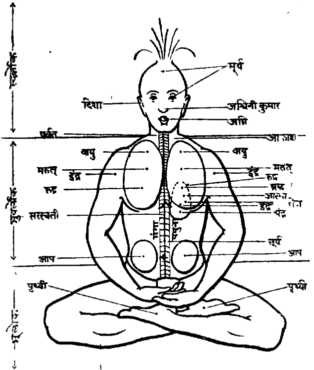
( १ ) सर्वा ह्यस्मिन्देवता शरीरेऽधि समाहिताः ॥

प्राणाग्नि होत्र उ. ४

( २ ) तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते । सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥

अथर्व. ११।८।३२

( १ ) सब देवताएं इस शरीरमें रहीं हैं । ( २ ) इसलिये इस पुरुषको जानने वाला ज्ञानी यह ब्रह्म है ऐसा कहता है, क्यों कि इसमें सब देवताएं उस प्रकार इकट्ठी रहती हैं जैसी कि गौवें गोशाला में रहती हैं ।




वेदका कथन और उपनिषद् का कथन कैसा एक ही है यह यहां प्रत्यक्ष देखिये। इस शरीररूपी यज्ञमंडपमें इंद्रादि संपूर्ण देव रहते हैं, यहां अपना अपना हविर्भाग ले रहे हैं, और यहां शतसांवत्सरिक महायज्ञ अथवा सत्र शुरू है। जो यज्ञ ब्राह्मणादि ग्रंथों में वर्णित है वह यहां शरीरमें प्रत्यक्ष हो रहा है। अर्थात् शरीरमें जो चल रहा है वह यज्ञ प्रत्यक्ष है परंतु अज्ञानी उसका अनुभव कर नहीं सकता, इसलिये उस अज्ञानी को बतानेके लिये यह बाह्य यज्ञ एक उदाहरणरूप है।

जिस प्रकार सूर्य चंद्रादि ग्रहोंका छोटासा नकशा अथवा नमूना पाठशालाओं में लडकों को दिखाते हैं, और समझाते हैं कि ग्रहमालामें ग्रहोंकी गति कैसी हो रही है, ठीक उसी प्रकार इस शरीर में अध्यात्म शक्तियों द्वारा जो शतसांवत्सरिक महायज्ञ चल रहा है, परंतु जिस को अनाडी जन समझ नहीं सकते, उस को स्पष्ट करनेके लिये यह बाहरका यज्ञ रचा है। इसका ठीक ठीक स्पष्टीकरण पूर्व स्थलमें दिये हुए चित्रसे ही है।

जायगा । वहां उस चित्रमें ही बताया है कि शरीर के यज्ञका नकशाही कैसा इस यज्ञशालामें खींचा है।

### मुख्य यज्ञ ।

अर्थात् मुख्य यज्ञ शरीरके अंदर चल रहा है और यज्ञशाला का यज्ञ उसका नकशा है। यही यज्ञ के विषयमें मूल कल्पना है, यदि पाठकोंको यह ठीक प्रकार समझमें आजायगी, तो ही वे यज्ञका महत्त्व और यज्ञका तत्त्व समझ सकेंगे। वैदिक यज्ञ का तत्त्व समझने के लिये इस मूल कल्पना का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

कई लोग ऐसा विपरीत ख्याल रखते हैं कि यह अध्यात्मयज्ञ की कल्पना वेदमंत्रोंमें कहीं नहीं है, परंतु यह उपनिषत्कारोंने बनायी है। यह बडा भारी और निर्मूल भ्रम है। क्यों कि जो सिद्धांत वेदके मंत्रों में कहे हैं वेही उपनिषदोंमें कहे हैं। शरीर रूप यज्ञ में संपूर्ण देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन होनेका वर्णन जैसा पहिले बताया है वैसा ही सब अन्य विधान है। वेदमंत्रके सिद्धान्तों का ही आविष्कार स्पष्ट रूपसे उपनिषदोंने किया है, उसमें अपनी बात नहीं मिलायी है।

उपनिषदोंमें ब्राह्मणग्रंथोक्त कर्मकांड का विरोध इसलिये किया है कि कर्मकांडियोंको कर्मका वैदिक रहस्य ही ज्ञात नहीं था किंवा वे भूल चुके थे, इस लिये उपनिषत्कारोंने सच्चा वैदिक रहस्य बताकर सच्चा वैदिक यज्ञ कहां और किस रूपमें देखना चाहिये, यह स्पष्ट रीतिसे बताया है। अस्तु।

### वैदिक यज्ञका तत्त्व ।

वास्तवमें वैदिक यज्ञका तत्त्व जैसा वेदके मंत्रोंमें था वैसा ही ब्राह्मण ग्रंथोंमें रहा नहीं है। वैदिक मंत्रोंमें कहे यज्ञ कर्म की अपेक्षा ब्राह्मणग्रंथमें कर्म बहुत ही बढ गया था। और कई बातें उस में अनावश्यक भी घुस गयीं थीं। ब्राह्मणग्रंथोंके समयके कर्मकांडीलोग ऐसा समझने लगे थे, कि वेद मंत्र केवल कर्मकांडके विनियोग के लिये ही हैं, उनका अन्य कोई भी उपयोग नहीं है। यह भाव श्रौतसूत्रादिकोंमें भी पाया जाता है। परंतु यह भाव गलत् है, और यही गलती उपनिषत्कारोंने स्पष्ट रूपसे बतायी है। और वास्तविक वैदिक अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप भी उन्होंने ही प्रकाशित किया है।

यहांतक गीता और उपनिषदोंमें जो यज्ञ का स्वरूप बताया है वह संक्षेपसे इस लेखमें बताया है। अब इसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथोंमें जो यज्ञ का रूप वर्णन किया है वह अगले लेख में बतायेंगे।

---

सूचना ।

# वैदिक अग्निविद्या ।



---

बडा गुरु ।

यदि इंद्र शक्ति आपके अंदर जागृत होगी, तो कठिनता ओंमें आपका उत्साह बढेगा, क्यों कि कठिनता ही योग्य मार्ग बताती है।

# शास्त्रार्थ की सहायता।

शास्त्रार्थ की सहायता वै. धर्म के ग्राहक तथा धर्मके प्रेमी सज्जनोंसे आ रही है। आज तारीख तक निम्न लिखित सहायता प्राप्त हो चुकी है। जो स्वयं दान भेज रहे है उनका धन्यवाद है। पाठक इसका अवश्य ख्याल रखें की जो सहायता भेजनी है वह यथासमय शीघ्र ही यहां पहुंचनी चाहिये। देरी लगनेसे कार्य की क्षती होगी। यद्यपि शास्त्रार्थ की तिथि इस समय तक निश्चित नहीं हुई है, तथापि तिथि निश्चित होनेके पश्चात् तैयारी के लिये समय ही नहीं रहेगा। यज्ञ विषयक ग्रंथ लिखना पहिला कार्य है। शास्त्रार्थ प्रारंभ होनेके पूर्व यह ग्रंथ मुद्रित होकर तैयार होना चाहिये। शास्त्रार्थ के दिन यदि हम यह ग्रंथ जनताके सन्मुख रख सकेंगे तो वैदिक धर्मका विजय निःसंदेह है। हमारे पक्षको पूर्णतासे जनताके सन्मुख रखना हमारा पहिला कार्य है। "निर्मांस यज्ञ" के पक्षका प्रचार करनेके लिये इस ग्रंथके निर्माण की आवश्यकता अत्यंत है।

जो इस शास्त्रार्थ की सहायता उचित प्रमाणमें करेंगे उन सब महानुभावोंकी सेवामें एक एक प्रति इस पुस्तक की अवश्य भेजी जाय गी। तथा शास्त्रार्थका संपूर्ण वृत्त उनके पास मुद्रित करके भेजा जायगा।

कई महाशयोंके तथा पंडितोंके पत्र हमारे पास आगये है, जिन्होंने लिखा है कि शास्त्रार्थ के समय हम अवश्य पधारेंगे, उनको सूचना दी जाती है कि शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित होने पर उनको अवश्य सूचना दी जायगी। तथा हिंदी उर्दूके अखबारोंमें तिथि प्रसिद्ध की जायगी। "वैदिक धर्म" मासिकमें तो हर समय पूर्ण खबर प्रसिद्ध होगी ही।

जो पंडित शास्त्रार्थ के लिये अपनी विद्वत्ता से सहायता देना चाहते है वे श्रुति-स्मृति पुराणों में से एक एक ग्रंथके प्रमाण इकट्ठे करके एक अपना लेख हमारे पास भेजदें।

जो महाशय आर्थिक सहायता भेजना चाहते है वे शीघ्र अपनी सहायता भेज दें। तथा जो अपनी सहानुभूति ही भेजना चाहते है वे भी समांस यज्ञके विरुद्ध अपनी अनुमति लिखकर भेजदें। इससे जनताके सन्मुख शास्त्रार्थ की सभामें हम यह रख सकेंगे कि भारत वर्षके इतने सज्जन पशुयज्ञके विरुद्ध हैं। पशुयागके विरुद्ध कितना लोकमत है यह इससे हम सभाके सामने रख सकते हैं। सभाका मत अनुकूल करनेका यह भी एक साधन सर्वमान्य ही है।

आज तारीख तक जिनसे आर्थिक सहायता

आगई है उनके नाम ये हैं —

| | |
|---|---|
| म. एस. वी. उडीपीकर | १० ) रु. |
| म. मकनदास पुरुषोत्तमजी | ५ ) |
| ,, राम स्वरूपसिंहजी | ५ ) |
| प शंकरलाल भगवानजी | ५ ) |
| श्रा. प्राणजीवन जमनादासजी | ५ ) |
| पं. सूर्य देव शर्माजी | २॥ ) |
| श्री. स्वा. विभूतिनंदजी | २ ) |
| म. पन्नालाल श्यामलालजी | ५ ) |
| ,, हरिरामजी | २ ) |
| पं. श्रीधर शर्माजी | ३।=) |
| ,, चेतराम शर्माजी | ५। ) |
| बा. न्यादर सिंहजी | ५ ) |
| म. मुरारीलालजी | २ ) |
| ,, शंकर वि. वर्डे | १० ) |
| ,, रामनारायणलालजी | ५ ) |
| श्री. आर्य समाज वच्छोवाली लाहौर | ४५॥) |
| म. जगद्बंधुजी | १० ) |
| श्री आर्य समाज अकोला | |
| म० पानाचंद दायाभाई | ५ ) |
| "बद्री शंकरजी | ५ ) |
| ,,ठेकेदार सायना | ) |
| ,,जेराम नागजी | २ ) |
| ,,लक्ष्मी नारायणजी | १ ) |
| ,,पेंचय्याजी | १ ) |
| ,,ऐलय्या" | १ ) |
| ,,गोपाळ स्वामी,, | १ ) |
| "रामय्या | १ ) |
| "रघुवीर जी | १ ) |
| "पं. रामदुलारे | १ ) |
| "रायचंद्र | १ ) |
| "लक्ष्मैय्या | १ ) |
| | २६ ) |
| इसमेसे प्राप्त | २५ ) |
| म हिंगलाल जी गुप्त | १० ) |
| म. सत्य देवजी | १० ) |
| म. नायक मुरली | ५ ) |
| म. बालकृष्ण जी | २ ) |
| म. लक्ष्मय्या | १ ) |
| म. दुर्गय्या | ।) |
| मंत्रीजी आर्य समाज तुंदला | ५ ) |
| ला.ज्ञानचंदजी काटाकर | ५० ) |

ता.२३।४।२५ तक सर्वयोग २३६=)

( दोसौ छत्तीस रु. दो आने )

यज्ञ विषयक पुस्तक छपाईका ही व्यय दो हजार रु. होना है। इसलिये इस विषय की सहायता शीघ्र आजायगी तो पुस्तक प्रेसमें भेजा जा सकता है।

आशा है कि यज्ञ के प्रेमी और वैदिक धर्म के अभिमानी इस अवसर का अवश्य ही ख्याल रखेंगे।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल औंध
( जि. सातारा )

## विशेष सूचना।

कई लोग पत्र उर्दूमें लिखते है, और वे क्या लिखते है, हमारे समझमें नहीं आता। पाठक स्मरण रखें कि यहां उर्दू जानने वाला कोई नहीं है।

आप मनुष्य हैं, इस लिये मनुष्यत्वके योग्य पुरुषार्थ करना और अपने आपको आदर्श मनुष्य सिद्ध करना, आपको उचित है।

# आसनों के साथ भस्रा प्राणायाम।

आसनोंके साथ प्राणायाम का अभ्यास करनेसे शरीरस्वास्थ्य की दृष्टिसे बहोत लाभ होते है। इस लिये इस रीतिसे अनुभव लेकर जो अभ्यास उत्तम और लाभदायक सिद्ध हुए हैं उनका वर्णन यहां दिया जाता है, जो पाठक अपने स्वास्थ्य के इच्छुक हं वे इसका अभ्यास करके लाभ उठा सकते हैं। इसके अभ्यासका क्रम निम्न प्रकार है—

**( १ ) समसूत्रावस्थिति । खडा होना।**

सीधा सम सूत्रमें खडा रहनेका पहिला अभ्यास है। पहिले दिवार के साथ पीठ लगाकर खडे हो जाइये। सिरका पृष्ठभाग, पीठ, चूतर, पांव की एडिया दिवारको लगें। इसका नाम "समसूत्रावस्थिति" है। पृष्ठवंश, पीठ, गला, सिरआदिको सीधा समसूत्रमें रखना इसमें मुख्य है। सब शरीर इस प्रकार समसूत्रमें रखकर अपने दोनों हाथ भी दोनों ओर सीधे नीचे लटकने दें। इस प्रकार समसूत्रमें खडा होनेसे शरीरका बोझ विदित ही नहीं होगा। इस समसूत्र स्थिति को छोडकर यदि आप अपना शरीर आगे या पीछे करेंगे, तो आपको शरीरका बोझ प्रतीत होगा। इस लिये आपको ऐसा खडा होना चाहिये कि, जिस अवस्थितिमें अपने शरीरका बोझ बिलकुल मालूम नहीं होगा। किंचित काल इस स्थितिमें रहिए।

**( २ ) समसूत्रावस्थिति और भस्त्रा।**

पूर्वोक्त प्रकार समसूत्रावस्थामें खडा होकर भस्त्रा प्राणायाम कीजिये। लुहारकी धौकनी का नाम भस्त्रा है उसमे जैसा वेगसे वायु अंदर घुमता है और बाहिर जाता है; उस प्रकार वेगसे पूरा श्वास अंदर लेना और वेगसे पूरा उच्छ्वास बाहिर छोडनेका नाम भस्त्रा प्राणायाम है। उक्त प्रकार खडा रहकर ये भस्त्रा प्राणायाम वेगसे पांच छे कीजिये। एक दो महिनेके अभ्यास से आप १५।२० तक भी कर सकते है।

**सावधानी की सूचना—** श्वास फेंफडोंमें प्रवेश करता है और उच्छ्वास फेंफडोंसे बाहिर निकलता है। श्वास और उच्छ्वासकी क्रिया वेगसे करनेका नाम भस्त्रा है। फेंफडोंमें उष्णता रहती है वहा अतिशीत वायु पहुंचनेसे सहन होना कठिन होता है; इस लिये भस्त्राका प्राणायाम प्रारंभमे थोडा और अभ्यास के पश्चात अधिक करना उचित है। प्रारभमे अधिक वार करनेसे कष्ट होते है।

**पूर्ण श्वास का लक्षण—** श्वास पूर्ण लेना चाहिये। फेफडोंके तीन विभाग है। एक पेटकी ओर है, दूसरा उसके ऊपर और तीसरा गलेके पास। गलेसे लेकर पेट तक जितना अतर है उसके तीन भाग कीजिये। उनमेंसे पेटकी ओर के भागमे प्रथम प्राणवायु जाना चाहिये, इस लिये योगग्रंथोंमे कहा है कि ( उदर पूरयित्वा ) उदर को पूर्ण करना चाहिये। वास्तव में पेटमें वायु जानेका प्रयोजन नही है, इस प्रकारके वाक्यों में "उदर" शब्दका अर्थ फेंफडोंका सबसे बिचला भाग है। इस भागमें श्वास जैसा जैसा भरा जाता है, वैसा वैसा पेटका आकार बढता है और ऐसा ही पता लगता है कि प्राणवायुसे पेटही भर रहा है। परंतु वास्तवमें वायु फेंफडोंमें ही पहुंचता है। इसके नंतर फेंफडोंके मध्य विभागमें वायु क्रमशः भरना चाहिये और पश्चात सबसे ऊपरले गलेके पासके विभागमें भरना चाहिये। इस विभागमें प्राण भरनेके समयही छाति फैलनी चाहिये। थोडासा ख्याल रखनेसे यह सब बात

विना आयास होने लगती है। उच्छ्वासके समय क्रमशः ऊपरके, मध्यके और निचले भागोंसे वायुको बाहिर छोडना चाहिये। श्वास अंदर जानेके समय पेट बडा होता है और उच्छ्वास पूर्ण रीतिसे बाहिर छोडनेके समय पेट अंदर जाता है। श्वास जितना अंदर जासके लेना चाहिये और उच्छ्वास भी निःशेष बाहिर फेकना चाहिये। श्वास लेनेके समय सिरको थोडासा पीछे झुकाना और उच्छ्वासके समय सिरको थोडासा आगे झुकाना अच्छा होता है। पूर्ण उच्छ्वास के समय पेट अंदर जाकर नाभिस्थानके सूर्यचक्रपर आघात करता है। इस लिये कहा जाता है कि प्राणयामसे सूर्यचक्रका वेध होजाता है। इस सूर्यचक्रवेध का वर्णन किसी अन्य समय विस्तार पूर्वक किया जायगा। यहां इतना ही पर्याप्त है।

उक्त प्रकार दर्पणसन मंद वेगसे परंतु श्वासोच्छ्वासकी गति समप्रमाणमें रखकर करनेसे उसका नाम **"सूर्यभेदन प्राणायाम"** होता है। और वेगसे श्वासोच्छ्वास करनेसे **"भस्त्रा प्राणायाम"** होता है। सूर्य भेदनमें निःस मात्र कुंभक आवश्यक है, परन्तु भस्त्रामें कुंभक की आवश्यकता नहीं है। यह विशेषता ध्यानमें आगयी तो इस लेख का कार्य हो जायगा।

**सब प्राणायामोंमें नाकसे ही श्वासोच्छ्वास करने चाहिये और मुख बंद ही रखना चाहिये। मुखसे श्वास** लेने से बीमारी बढती है और नाकसे श्वासोच्छ्वास करनेसे बीमारी दूर हो जाती है।

### ( ३ ) उच्छ्वास और श्वास।

इस अभ्यासका प्रारंभ उच्छ्वाससे कीजिये पूर्वोक्त प्रकार समसूत्रमें खडा होकर वेगसे उच्छ्वास बाहिर फेंकिये। प्रयत्न करके सब उच्छ्वास बाहिर फेंक दीजिये। पेट वेगसे अंदर आकर्षित करनेसे निःशेष उच्छ्वास हो सकता है। उच्छासके बाद श्वास अंदर लीजिये उच्छ्वास अच्छा हुआ तो स्वाभाविक रीतिसे श्वास क्रिया अच्छी होजाती है।

### ( ४ ) हस्त प्रक्षेप और भस्त्रा।

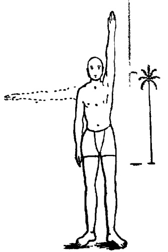
पूर्वोक्त प्रकार समसूत्रमें खडा रहकर हाथोंको वेगसे आगे और वेगसे पीछे कीजिये। हाथ आगे करके बाहुओंको सीधमें आजाय और पीछे जितने जासके उतने चले जाय। हाथ आगे करनेके समय पूर्ण श्वास वेगसे लीजिये और हाथ पीछे जानेके समय वेगसे पूर्ण उच्छ्वास लीजिये। इस प्रकार चार पांचवार वेगसे कीजिये। जितना वेग अधिक होगा उतना लाभ अधिक होगा। हाथों और छातीमें खूनका प्रवाह अच्छी प्रकार होने के लिये इस अभ्याससे बडी सहायता होती है।

### ( ५ ) हस्तचक्र और भस्त्रा।

संख्या४क अभ्यासमें हाथोंको आगे और पीछे करना होता है। इस प्रकार हाथ आगे पीछे करनेसे हाथों द्वारा आधा चक्र भ्रमणमें बनता है। इस को पूर्ण चक्र बनाना इस अभ्यासमें है। बाहुदंड चक्रका मध्य

मानकर हाथोंको वेगसे घुमाइये। वेगसे घुमनेसे अंगुलियोंमें खून आता है और वहां चुभनेका अनुभव होता है। चुभने तक ही यह अभ्यास करना है, इससे अधिक नहीं। हाथोंका चक्र आधा अपने सामने होगा और आधा अपने पीछे होगा। एक बारमें श्वास और दूसरी बार में उच्छ्वास लेनेका यत्न करना चाहिये। तथा यह अभ्यास पाच सात वार करनेके पश्चात् हाथोंको सीधा ऊपर छत की ओर करके खूनको पुनः नीचे जानेका अवसर देना उचित है। हस्त चक्रमें खून अंगुलियोंमें आनेसे हाथका पंजा अधिक लाल दीखता है, वह हाथ ऊपर करनेसे पुनः पूर्ववत होता है।

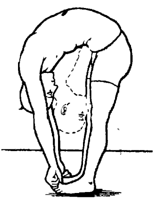
यह हस्तचक्र हाथोंके हेर फेर से तथा हाथोंका क्रम बदलनेसे अनेक प्रकारसे किया जा सकते है। पाठक विचार करेंगे तो उनको स्वयं पता लग सकता है।



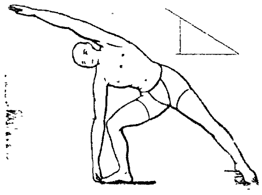
## ६ श्वास के साथ ताडासन।

समसूत्र में पूर्वोक्त प्रकार खडे रहिये और पूर्ण श्वास लीजिये। तत्पश्चात् ताडासनमें लिखे अनुसार हाथ ऊपर नीचे और तिरछे कीजिये। हाथोंका घुमाना क्रमके साथ होना चाहिये और क्रमपूर्वक एकवार श्वास और दूसरीबार उच्छ्वास करना चाहिये। यह अभ्यास दोचार वार कीजिये।

## ७ पादांगुष्ठासन और भस्त्रा।

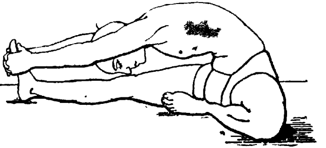


पूर्वोक्त प्रकार समसूत्र खडे हो जाइये और पूर्णश्वास अंदर लेकर हाथ ऊपर सीधे छतकी ओर कीजिये। पश्चात् उछ्वासके साथ हाथ नीचे करके अपने पावकी अंगुलियों-को हाथकी अंगुलियोंसे स्पर्श कीजिये तथा अपना सिर घुटनों को लगाइये। श्वासके साथ हाथ ऊपर और उच्छ्वासके साथ हाथ नीचे करने चाहिये और इस क्रमसे दोचारवार अभ्यास कीजिये।



८ कोनासन और भस्रा।

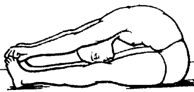
समसूत्र में खडा होकर अपने हाथ भूमिकी समरेखामें फैलाइये तथा पांव भी फैलाइये। पश्चात् श्वासके साथ कमर को टेढा करके एक हाथ पांवकी अंगुलियें को लगाइये और उछ्वास के साथ दूसरा हाथ विरुद्ध दिशामें उसी प्रकार दूसरी तर्फके पांवकी अंगुलियोंको लगाइये। इस प्रकार क्रमपूर्वक कोनासन के साथ भस्रा प्राणायाम दोचार वार करना चाहिये। इसका दूसरा प्रकार यह है कि दायां और बायां हाथ दोनों पावों-के बीचमें क्रमपूर्वक श्वास और उछ्वास के साथ लगाना। इस समय केवल कमर को ही घुमाना होता है। घुटने सीधे रखने चाहिये।



९ जानुशिरासन और भस्रा।

भूमिपर बैठकर एक पांव जमीनपर फैलाइये और दूसरे पांव का पंजा फैले पांवकी जंघापर अच्छी प्रकार जमा दीजिये। पश्चात धड सीधा रख कर पूर्ण श्वास लीजिये और उच्छ्वास के साथ दोनों हाथों से फैले हुए

पांवका अंगूठा पकडकर सिर घुटनेको लगाइये। फिर पूर्ववत् धड सीधा करके श्वास लेकर पूर्ववत् सिर घुटनेको लगानेके समय उच्छ्वास कीजिये। यह सब अति शीघ्र और वेगसे करना चाहिये। पाव के हर फेरसे दो चार वार कीजिये।



१० दंडासन, पादशिरासन और भस्त्रा।

भूमिपर पीठके आधार लेट जाइये। दोनों पावोंको साथ साथ सीधा रखिये। सब पीठ समसूत्रमें रखिये तथा हाथ भी सिरके पीछे जोडकर अथवा साथ साथ रखिये। पावसे हाथोंके पंजों तक सब शरीर दंडवत समसूत्र रहे। इसको दंडासन कहते है।

दंडासन में एक निमेष रहकर कमरके उपरका धड ऊपर उठाइये और हाथोंको आगे करके पावोंके अंगुठे पकड लीजिये और सिर घुटनोंको लगाइये। यह पादशिरासन हुआ।

दंडासनमें श्वास लेकर पादशिरासनमें छोडना। इसी क्रमसे करना चाहिये। यह अभ्यास दोचार वार कीजिये।

### इस अभ्यासका फल।

ये दस प्रकारके अभ्यास है। प्रत्येक अभ्यास दोतीनवार भी किया जाय तो प्रत्येक अभ्यासको आधे मिनिटसे अधिक समय नहीं लगेगा। और दसों अभ्यासोंको पांच मिनिट पर्याप्त है। इस प्रकार भस्त्रा प्राणायाम के साथ ये आसन पांच मिनिट तक करनेसे आपका उत्साह द्विगुणित हो जायगा, आपकी क्षुधा प्रदीप्त होगी, पचन शक्ति बढेगी, कोष्ठगत वायु दूर होगा, और शरीरकी कान्ति बढेगी।

कोसाजल एक दो कौल पीकर अथवा कोसे जलमें थोडा नमक डालकर पीनेके पश्चात् यदि ये आसन भस्त्राके साथ आप करेंगे तो शौचशुद्धि होगी और अच्छी प्रकार क्षुधा प्रदिप्त होगी।

अधिक अभ्यास होनेपर भी दस मिनिटोंसे अधिक यह अभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं है। इससे पेटके सब दोष दूर होंगे और पाचन शक्ति बढ जायगी। यह अनुभव सिद्ध बात है।

# जीव और ईश्वर।

( ले० विद्या भूषण, विभु )

सत्य सनातन नाता है ।
मै अल्पज्ञ सखा तेरा हूँ, तू सर्वज्ञ विधाता है ।
उस तरुवर के दोनों वासी, जो अनादि कहलाता है ।
मै उसका फल खाने वाला तू मेरा फल दाता है ।
मैं बचपन का मित्र वही हूँ, क्या न याद कुछ आता है ।
बहुत दिनों तक खेल खाये मुहँ क्यों आब छिपाता है ।
जन्म मरणके बन्धन में हूँ निर्विकार तू त्राता है ।
भूल गया है बाल सखे क्या जो ऐसा कलपाता है ।
आजा आजा फिर देखूं मैं लोचन अति ललचाता है ।
बहुत दिवस ' विभु ' बीतगये है दर्शन क्यों न दिखाता है ।

## साहित्य मंदिर ।

१ भक्तिदर्पण अथवा आत्मप्रसाद-

( ले०— श्री. चतुर भाई बाबर भाई पटेल प्रकाशक— श्री. मोती भाई लक्ष्मीदास पटेल, आर्यसमाज आनंद, मू. ०—६—० )

आर्यभाषा में म. राजपाल द्वारा प्रकाशित " भक्तिदर्पण " का गुजराती भाषाका अनुवाद श्री. चतुर भाईजीने किया है और करीब दोसौ पृष्ठोंका ग्रंथ केवल छह आनेके नाममात्र मूल्य में गुजराती लोगों के सन्मुख रखा है । इस लिये हम अनुवादक और प्रकाशक जीका धन्य वाद करते है । इसी

ऐसेकार धार्मिक पुस्तक अल्प मूल्य में देने चाहिये, तब धर्मकी जागृति हो सकती है ।

२ वैदिक दर्शन— ( ले० पंडित चमूपतिजी, प्रकाशक— म. राजपालजी, सरस्वति आश्रम लाहौर मू. ।≈ )

इस पुस्तकमें आत्मा, परमात्मा, सृष्टि की उत्पत्ति, ज्ञानका प्रारंभ, मुक्ति और उसके साधन, सुखदुःखकी समस्या इतने विषयोंका विचार वैदिक तत्त्वज्ञान की दृष्टिसे किया है ।

३ पंचमहायज्ञपीयूष— ( सं०– श्री. चट्टूलालजी आर्यसमाज बादा । प्रकाशक– म. मथुरा प्रसाद खरे, कटरा बादा। मू. ।-)

श्री० स्वा० दयानंद सरस्वति रचित पचमहायज्ञका पद्यानुवाद है । पद्य बडे ही मनोरंजक है ।

४ भारतीय गीत—( ले.– श्री. पं. भूरालाल कथा व्यास शाहपुरा । मू. ।-)

भारत उन्नति के विषयपर मनोरंजक गीत इस पुस्तकमें है

३ चार फल— ( ले०– श्री. पं. गणपति आर्योपदेशक देहलि, मू. । )

सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारविधि, आर्याभिविनय पचमहायज्ञ, व्यवहार भानु, गोकरुणानिधि, सत्यधर्म विचार इन पुस्तकोंसे वाक्य उद्धृत करके चार मीठे फल जनताके सन्मुख रखे हैं । फल अत्यंत मीठे हैं इसमें संदेह नहीं है ।

४ वेद और गोमेध— ( ले०–श्री श्यामसुंदर दास वकील मैनपुरी । म. – )

वेदमें गोमेध के सूचक शब्द और मंत्र जो जो है उनका सच्चा वैदिक अर्थ दिया है , इस लिये पुस्तक उपयोगी है ।

व्यासोपदेश – ( ले० भूरालाल व्यास, शाहपुरा )

इसमें संक्षेपसे चार वर्णोंके कर्तव्य लिखे है । ऋषि वचन और पद्यानुवाद भी है ।

६ सत्यासत्यनिर्णय— ( ला. जगन्नाथ दास मुरादाबाद, प्रकाशक— श्री नाहर सिंह वर्मा, महाराजाधिराज शाहपुरा मेवाड. विना मूल्य )

७ मेघउद्धारसभा सियालकोट पंजाब का रिपोर्ट देखनेसे पता लगता है इस सभा. का कार्य उत्तम रीतिसे चल रहा है । चालक प्रशंसाके योग्य है ।

८ सत्यवादी– ( संपादक, श्री. प. भीमसेन विद्यालंकार, लाहोर । वार्षिक मूल्य ३॥ )

यह आर्य भाषाका साप्ताहिक पत्र लाहोरसे पं. भीमसेनजी के संपादकत्वमें प्रकाशित हो रहा है । पत्र अत्यंत उपयोगी है । राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जागृती पंजाबमें करनेके उद्देश्यसे इसका जन्म हुआ है । प्राप्त अंकोंसे निश्चय हो सकता है कि अपने उद्देश्य पूर्ण करने में संपादक अवश्य कृतकार्य होंगे । आर्य भाषाके अभिमानी इस पत्रके अवश्य ग्राहक बनें ।

# शुद्धि ।

( लेखक – श्री कुंवर चान्दकरण शारदा. )

" कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।"　　ऋ० ९।६३।५

यह बडे ही हर्ष की बात है कि भारत में शुद्धि का प्रचार दिनों दिन बढता जा रहा है, यहां तक कि सन १९२४ के दिसम्बर मास में बेलगाव राष्ट्रीय महासभा के अवसर पर भी शुद्धि और हिन्दूसंगठन का समर्थक हिन्दू महासभा का विशेष अधिवेशन सफलतापूर्वक होगया। उस में देश के पूज्यवर महात्मा गांधीजी, दास, नेहरू आदि से लेकर अनेकशः राष्ट्रीय मुसल्मान नेता भी उपस्थित हुए थे ये सब नेता पहिले शुद्धि और संगठन का विरोध करते थे, अब अवश्य ही इनका भ्रम दूर होगया होगा। शुद्धि और हिन्दू-संगठन की सफलता इससे अधिक और क्या हो सकती है कि मौलाना शौकतअली और मौ० मोहम्मदअली साहब तक हिन्दू-महासभा में पधारे। क्षत्रियों में तो शुद्धि का प्रस्ताव आगरे में ही क्षत्रिय महा सभा के अवसर पर श्रीमान वयोवृद्ध राजाधिराज शाहपुरा के सभापतित्व में तारीख ३१ दिसम्बर सन १९२२ को पास हो चुका था। और वृन्दावन में इन्हीं शीशोदिया कुलभूषण महाराणा प्रताप के वशज हिज हाइनेस सर नाहरसिंहजी वर्मा के.सी.एस.आई. के सभापतित्व में शुद्ध हुये मलकाने राजपूतों ने अन्य सर्वश्रेष्ठ राजपूतों के साथ एकमञ्चपर बैठ कर भ्रातृसम्मेलन किया। उसमें राजस्थानकेसरी खरवानरेश, रावसाहेब गोपालसिंहजी राष्ट्रवर तथा बडे बडे राजाओं के साथ न केवल मलकानो ने खान पान ही किया किन्तु राजाधिराज शाहपुरा ने यह एलान भी किया कि आज से इन शुद्ध हुये राजपूतों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार खुलगया है। इसी प्रकार हिन्दुओं की नाना जातीय कान्फ्रेंसों ने शुद्धि और संगठन के हक मे प्रस्ताव पास कर दिये और बडे बडे पंडितों ने व्यवस्थायें देदीं, किन्तु इतना होने पर भी अब तक हमारे मार्ग मे बहुतसे कांटे बिछे हुये हैं। गत दो वर्षोंसे शुद्धि और हिन्दू सगठन का जो कार्य मैं कर रहा हूं, उसके अनुभव से मुझे यही निश्चय हुआ है कि बहुत हिन्दू शुद्धि का इसलिये विरोध करते हैं कि शुद्ध हुये लोगों के मिलानेसे इनके रक्त की पवित्रता जाती रहेगी, यदि उनको यह ज्ञात होजाय कि उनके पूर्वज दूसरों को मिलाते रहे है और रक्त की पवित्रता कोरा ढकोसला मात्र है तो वे शुद्धि का कभी विरोध न करें। मेरा इस अध्याय में ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यही सिद्ध करने का प्रयत्न होगा कि प्राचीन इतिहास से आम हिन्दुओंकी रक्त की पवित्रता विषयक विश्वास असत्य है।

हिन्दू जाति चार भागों में विभक्त है, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। उत्तर भारत में ये चारों वर्ण विद्यमान हैं और दक्षिण भारत में केवल दो वर्ण विद्यमान हैं। ब्राह्मण और शूद्र, दाक्षिणात्यों का कहना है, कि परशुरामजी ने क्षत्रियों का नाश कर दिया अतः जो पीछे दक्षिण में राजा हुये वे सब शूद्र हुये। प्राचीन हिन्दु शास्त्रों के देखने से यह स्पष्ट विदित होता है, कि पहले दो प्रकार के विवाह होते थे एक तो अनुलोम और दूसरा प्रतिलोम। अनुलोम तो उसे कहते हैं, जिसमें कि उच्च जाति का ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने से नीच जाति वाली स्त्री से विवाह करे, और प्रतिलोम उसे कहते हैं, जिसमे उच्च जाति वाली स्त्री अपने से नीच जाति वाले पुरुष से विवाह करले, परन्तु उपरोक्त शास्त्रसमर्थित विवाहों द्वारा उत्पन्न हुई संतति के विद्यमान रहने पर भी हिन्दू जनता का यह विश्वास है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये द्विज है। और इनके अन्दर रुधिर की पवित्रता है, अर्थात् सृष्टि की आदि में जो ब्रह्मण थे उन्हीं की वंशपरम्परा अब तक वर्तमान है। उसमे कोई बाहरी मिलावट नहीं हुई है। एवं जो क्षत्रिय है वे बिना किसी बाह्यमिश्रण के आदिम क्षत्रियों के वंशज है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि हिन्दुधर्म विदेशी व विधर्मी को कभी हिन्दू जाति व धर्म में प्रविष्ट होने की आज्ञा नहीं देता। अब हमें जिस पर विचार करना है वह यह है कि आया हमारे प्राचीन महर्षि दूसरों को अर्थात विदेशियों को हिन्दूधर्म मे सम्मिलित करते थे या नहीं व धर्मभ्रष्ट, पतित पीछे से प्रायश्चित्त द्वारा मिलाये जाते थे या नहीं।

हिन्दुओं की सब से प्राचीन धर्मपुस्तक वेद है। वेदो को हम ईश्वरीय ज्ञान मानते है, वेदों में न केवल 'यथेमां वाचं कल्याणी' वाले मन्त्र मे सब को वेद पढने की आज्ञा है परन्तु "पुनन्तु मा देवजनाः" वाले मन्त्रों से सारे विश्व को पवित्र करने की आज्ञा है। यही नहीं, ऋग्वेद ९-६३-५ मे-

**" इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वंतो विश्वमार्यम् "**

मन्त्र द्वारा ईश्वर की महिमा बढाते हुये सब ससार को आर्य बनाने की आज्ञा है। और ऋग्वेद १०। १३७। १ मे यह मन्त्र आया है—

**उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥**

" जो गिरे है उनको पुनः उठावो। जिन्होंने पाप किया है, जिनका जीवन मैला होगया है उनको फिर से जीवन दो और शुद्ध करो।"

इतनी स्पष्ट आज्ञाओं के अतिरिक्त वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के इतिहास देखने से स्पष्ट विदित होता है कि सब वर्णों में से वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुये है।

वेदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि पृथक् पृथक् है। ऋग्वेद के १० मण्डल है। इसके

के पृथक पृथक् ऋषि है। इन ऋषियों की नामावली देखने से स्पष्ट पता लगता है कि ये मन्त्रद्रष्टा ऋषि सब के सब ब्राह्मण ही नहीं थे। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र और उनके कुटुम्बी हुए हैं। और प्रत्येक हिन्दू जानता है कि महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय थे, ब्राह्मण नहीं थे। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ४३ वें व ४४ वें मन्त्र के द्रष्टा अजमीढ और पुरमीढ ऋषि हुए हैं। विष्णुपुराण में लिखा है कि अजमीढ और पुरमीढ क्षत्रिय थे। महाभारत के "अनुशासन पर्व" में लिखा हुआ है, कि विश्वामित्रजी कठिन तपस्या के बाद ब्राह्मण बने।

**ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः। क्षत्रियोऽपि च सोऽत्यर्थं ब्रह्मदेशस्थकारकः॥**

और ब्राह्मणों में जो कौशिक गोत्र वाले ब्राह्मण हैं वे विश्वामित्र के ही वंशज हैं और आजतक ब्राह्मण लोग कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों के साथ विवाह आदि सब प्रकार के संबन्ध करते आये हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण और क्षत्रिय का रक्त परस्पर मिल जाता था। और जो अभिमानी ब्राह्मण रक्त की पवित्रता की डींग मारते हैं उनका सिद्धान्त शास्त्रानुकूल नहीं है। जिस समय द्रौपदी का स्वयंवर हुवा था उस समय पाण्डव, ब्राह्मण वेश में ही आये थे और अर्जुन ने ब्राह्मणवेश में ही मछली की आंख भेद कर द्रौपदी को स्वयंवर में जीता था। इससे सिद्ध है कि प्राचीन समय में ब्राह्मण क्षत्रिय आपस में विवाह करते थे। इसी प्रकार सीता स्वयंवर में धनुष तोड़ने के लिये रावण जैसे ब्राह्मण आये थे और सीता से विवाह करने के लिये उद्यत थे। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों का आपस में विवाह होता था। ये "काण्वायन" ब्राह्मण अजमीढ क्षत्रिय के पुत्र "कण्वऋषि" की सन्तति हैं। इसी प्रकार वैश्य लोग भी ब्राह्मण बन जाते थे। हरिवंश पुराण में लिखा है कि नाभागरिष्ट-वैश्य के दोनों लड़के वैश्य से ब्राह्मण बन गये।

**"नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।"** ६५९

कवश, एलूष शूद्र थे परन्तु इनकी धार्मिकता के कारण ऋषियों ने इन्हें अपने मंडल में मिला लिया था। जानश्रुति पौत्रायण नाम का एक शूद्र भी राजा होगया था और तत्पश्चात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण बन गया था।

यह सब बातें स्पष्टतया यह ही प्रमाणित करती हैं कि हिन्दूजाति में परस्पर चारों वर्णों में विवाहसंबंध होता था और हिन्दू-जाति एक थी। कविवर कालिदास की प्रसिद्ध शकुन्तला कैसे उत्पन्न हुई थी। विश्वामित्र ऋषि ने मेनका अप्सरा से संभोग किया तब विश्वामित्र के वीर्य से वह पैदा हुई। इस प्रकार उत्पन्न शकुन्तला से प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा दुष्यन्त ने विवाह कर लिया। जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म

ही प्रधान था और सब मानते थे

**"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम् "**

अर्थात् कर्म से शूद्र ब्राह्मण हो जाता था और ब्राह्मण शूद्र।

ब्राह्मणों में वसिष्ठ गोत्र वाले बहुत पवित्र माने जाते हैं। परन्तु वासिष्ठ गोत्र वाले कौन थे। यह बात महाभारत के निम्नलिखित श्लोक से विदित होती है।

**गणिकागर्भसम्भूतो वासिष्ठश्च महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम्॥**

महर्षि वसिष्ठ वेश्या के गर्भ से पैदा हुए परन्तु अपनी तपस्या के कारण ब्राह्मण पद को प्राप्त होगये। ऋग्वेद के सातवें मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि वसिष्ठजी ही हैं। इसी प्रकार व्यासजी महाराज जिन्होंने महाभारत रची उनकी तथा पराशर ऋषि की भी उत्पत्ति महाभारत के वनपर्व में शूद्रकुल से बनाई गई है। पराशर ऋषि चाण्डाली के पेट से पैदा हुए, और व्यासजी मछुए की पुत्री योजनगन्धा के पेट से उत्पन्न हुए।

**जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपच्यास्तु पराशरः। बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजा॥**

पराशर मुनिने योजनगन्धा मछलीमार की पुत्री से सम्भोग किया तब व्यासजी उत्पन्न हुए। और फिर उसी योजनगन्धाका विवाह राजा शान्तनु के साथ हुआ। उसके पुत्र चित्रांगद विचित्रवीर्य भारतवर्ष के राज्य के मालिक हुए। उनकी रानियों से व्यासजी ने नियोग कर के पांडु और धृतराष्ट्र को पैदा किया। और दासी से भोग किया उससे विदुरजी पैदा हुए।

पीछे के काल में भी यह याज्ञवल्क्यस्मृति के अध्याय ४ मे लिखा है कि—

**जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम्॥**

इसके पश्चात् याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानेश्वर भट्ट ने मिताक्षरा में लिखा है कि सातवीं पीढ़ी में वा पांचवी पीढ़ी में ब्राह्मण का निषादी के साथ विवाह होने पर उनके पुत्र वा पुत्री ब्राह्मण हो जाते थे। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी लिखा है देखो मनु अध्याय १० श्लोक ६४

**शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत् प्रजायते। अश्रेयाञ्छ्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्॥**

इससे सिद्ध हो गया कि शूद्री से विवाह करने पर भी ६ वीं व ७ वीं पीढ़ी में उस की संतति ब्राह्मण बन जाती थी। कुल्लूक भट्ट मनुस्मृतिके प्रसिद्ध टीकाकार ने तो यहा तक लिखा है कि यदि शूद्र ब्राह्मणी के साथ विवाह करले और उससे पुत्र उत्पन्न हो तो वह पहली पीढ़ी में ही ब्राह्मण होजायगा। और यदि ७ पीढ़ी तक बराबर शूद्रों में विवाह करेगा तो शूद्र होगा, नहीं तो शूद्रों मे विवाह करने पर भी ६ पीढ़ी तक तो बरबर ब्राह्मण ही रहेगा।

अतः ब्राह्मण में शूद्र का खून विद्यमान है। और उच्च जातियों के रक्त की पवित्रता वाला सिद्धान्त प्राचीन शास्त्रों के आधार पर मिथ्या साबित होता है। पुराणों में स्थान स्थान पर "ब्रह्मक्षत्र" शब्द आता है इसके मायने यह हैं कि जो क्षत्रिय-ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के गुणों से सम्पन्न होते थे वे ही ब्रह्मक्षत्रिय कहलाते थे। इसका अर्थ कई यह भी लगाते हैं कि जो क्षत्रिय थे परन्तु उनकी संतति ब्राह्मण हुई वे ब्रह्म क्षत्रिय हैं। और कहीं पर यह भी अर्थ लगाया जाता है कि पिता क्षत्रिय और उसने ब्राह्मण स्त्री से विवाह कर लिया तो ब्रह्म क्षत्रिय बन गये। सूत यद्यपि क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी के रज से उत्पन्न हुये थे तथापि बडे बडे ऋषि उन्हीं सूतजी से कथा सुनने सामने आकर नीचे बैठते थे। विष्णुपुराण में लिखा है कि पुरु राजा के कुल से ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्पन्न हुए। ययाति और शर्मिष्ठा क्षत्रिय पुरु राजा के माता पिता थे। इसी विष्णुपुराण के ९ वें और १० वें अध्याय से यह भी सिद्ध होता है, कि गार्ग्य, शाडिल्य और काण्वायन व मोद्गल्य आदि गोत्र जो ब्राह्मणों के हैं वे क्षत्रियों से निकले। मारवाड के छींपे भी पहिले ब्राह्मण थे पीछे क्षत्रिय बने और ब्रह्मक्षत्र कहलाने लगे। इसी प्रकार से महेश्वरी ओसवाल आदि क्षत्रियों से वैश्य बने। और वैश्यों के साथ उनका विवाह संस्कार होने लगा। इसी प्रकार नाना जातियां बनी। मारवाड में अदतक यही रिवाज है, कि दरोगे जो राजपूत पिता और नीच जाति की स्त्री के पेट से पैदा होते है, वे यदि धनवान् और गुणवान हो जावें तो राजपूतों में मिला लिये जाते हैं। और जो राजपूत पतित और निर्धन हो जाते वे दरोगे बन जाते हैं। राजस्थान में यह कहावत अब तक प्रचलित है कि "तीजी पीढी ठाकुर और तीजी पीढी चाकर ( दारोगा )" खरवड नन्दाने बोडाना आदि राजपूत जीविका न रहने से दरोगे होगये। ता २१ दिसम्बर सन १८९६ में श्रीमान राजाराम रामकृष्ण भागवतने एक लेख रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई शाखा के पत्र में छपवाया था जिसमें उन्हों ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक काल मे अनार्यों को आर्य बनाते थे उनकी शुद्धि के लिये एक यज्ञ किया जाता था। जिसका नाम व्रात्यस्तोम यज्ञ है। इस यज्ञ द्वारा ३३ व्रात्य और उनका एक सरदार एक साथ ३४ मनुष्य शुद्ध होकर आर्य बना लिये जाते थे। और इसके बाद उनको द्विजो के अधिकार दे दिये जाते थे। सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण के १७ वें अध्याय मे इसका विस्तृत विवरण मिलता है। लाखों अनार्य इसी प्रकार ३४ (चौतीस) के समूह में शुध्द कर के आर्य बनाये गये। इसी प्रकार लाट्यायन ब्राह्मण में हीन व्रात्य आदिकों के ४ प्रकार के व्रात्यस्तोम यज्ञों द्वारा शुद्धि और प्रायश्चित्त लिखा है। इसके विषय में विशेष देखने की इच्छा

हो तो सन् १८९७ के नम्बर ५३ वाल्यूम १६ रायल एशियाटिक सोसाइटी के बम्बई शाखा की पत्रिका के ३५७ से लेकर ३६४ पृष्ठ तक देखो। इसके अतिरिक्त वेदों, उपनिषदों, वायुपुराण, हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण, भविष्यपुराण, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों तथा जुन्नर, नासिक, सांची आदि के प्राचीन शिलालेखों व प्राचीन सिक्कों से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन समय में बाहर से आये लोगों को हमारे पूर्वज अपने में मिला लेते थे। कुछ प्रमाण इसी पुस्तक में दे दिये हैं। अधिक देखना हो तो Foreign elements in the Hindu papulation नामक लेख जो Indian Antiquaery में Vol.1911 में छपा है उसे पढो।

भील आदि अनार्य किस प्रकार हिन्दू रीति रस्म मानकर हममें मिलगये, इस बात के अब तक प्रमाण मिलते हैं।

भील और गासियों में राजपूतों की जातियां अब तक विद्यमान हैं। हमारी स्मृतियों में प्रायश्चित्त की विधि बहुत प्राचीन काल से चली आती है। भारतवर्ष में हूण, सीदियन आदि जो बाहर से आये वे सब आर्य बनाये गये, और विदेशों में भी यहां से आर्य मिशनरियों ने जा जाकर विधर्मियों को आर्य बनाया। सम्राट अशोक ने चीन जापान में धर्म प्रचारक भेजे और सबों को बौद्ध बनाये। भारतवर्ष के बाहिर जो ४५ करोड बौद्ध हैं वे हमारे ही धर्म भाई हिन्दू भाई हैं।

आज तक हूण जो पहिले तिब्बत से टाइग्रीस नदी तक पहुंचे हुये थे भारतवर्ष में परमार क्षत्रियों की एक शाखा माने जाते हैं। और उनसे सब क्षत्रिय विवाह करते हैं। हमने आर्य सभ्यता फैलाई तभी तो हमारा चक्रवर्ती साम्राज्य सारे संसार में विस्तृत था। हमारे आर्य राजा सर्वत्र राज्य करते थे। अफगानिस्तान में शकुनि, चीन में भगदत्त, यूरोप में बिडालाक्ष, अमेरिका में बभ्रुवाहन आदि राज्य करते थे।

वीरश्रेष्ठ अर्जुनने अमेरिका की राजकन्या उलूपी से विवाह किया था; महाभारत में युधिष्ठिर ने जो राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब राजाओं का वर्णन है। पूज्य शंकर स्वामी ने तो शंख बजा कर ही सारा भारत शुद्ध किया था। जो शान्ति से शुद्ध न हुये उन्हें तलवार के जोर से उन्होंने शुद्ध किया देखो "शंकर दिग्विजय" चन्द्रगुप्त ने सल्यूकस की लड़की के साथ विवाह किया था। सिकन्दर के साथ आये हुये बहुतसे ग्रीक आर्य बनाये गये; और बुद्ध भगवान का विदेशों में धर्म प्रचार किससे छिपा है। उनकी शुद्धि की लहर तो देश देशान्तरों में फैली हुई थी। पुष्कर के प्राचीन इतिहास में लिखा है कि ऋषियों ने निरीति राक्षस को पुण्यभूमि पुष्कर में शुद्ध कर के वैदिक धर्मानुयायी बनाया। बौद्धों के इतिहास में लिखा है कि बौद्ध प्रचारक तीर्थों में जाकर ब्राह्मणों तथा आर्यजातियों को बौद्ध मतानुयायी बनाते थे। सांची

रियासत भूपाल में ईसा के २०० वर्ष पूर्व के बौद्ध स्तूप मिलते हैं उनसे भी शुद्धि की प्रथा प्राचीन साबित होती है।

बम्बई सरकार के पुरातत्व विभाग की सन १९१४ ई० की "प्रोग्रेस रिपोर्ट" हाल ही में प्रकाशित हुई है। उस में एक शिलालेख है जो ग्वालियर रियासत के भेलसा शहर के पास बसे खांदवावा नामक एक गरुडध्वज स्तम्भ पर मिला है, इस लेख में यह कहा है कि "देलियो डोरस" नामक एक हिन्दू बने यवन अर्थात् ग्रीकने इस स्तम्भ के सामने वासुदेव का मन्दिर बनवाया और यह यवन वहां के भगभद्र नामक राजा के दरबार में तक्षशिला के (एंट आल्कट्स उस) नामक ग्रीक राजा के एलची की हैसियत से रहता था "एन्टि आल्कट्स (आ-टिक) उस" के सिक्को से अब यह सिद्ध किया गया है, कि वह ईसा के १४० वर्ष पूर्व राज्य करता था इससे यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है, कि उस समय भारत मे वासुदेव भक्ति प्रचलित थी। केवल इतना ही नहीं किन्तु यवन लोग भी वासुदेव के मन्दिर बनवाने लगे थे, अत सिद्ध है कि हिन्दुओं मे शुद्धि का रिवाज बहुत ही पुराना है, शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दुर्बलताओ एवं आडम्बर पूर्ण साम्प्रदायिक बखेडों के कारण यह रिवाज मुसलमानों के समयमे दब गया था, और इसके दब जाने में मुसलमान बादशाहों का अन्यायपूर्ण शासन भी कारण था पुराणों में ऐसे सैकडों उदाहरण पाये जाते हैं जिनसे यह सफ़ाई पर सिद्ध हो जाता है कि हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों राजा महाराजों ने लाखों करोडों बौद्धो और म्लेच्छों को शुद्ध करके पुनः सनातन धर्म, हिन्दु जातिमे मिलाया था। भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व खं० ४ अध्याय २१ में लिखा है कि—

> सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेश-मुपाययौ। म्लेच्छान् संस्कृतमाभाष्य तदा दशसहस्रकान्॥ वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे। ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम्॥ सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान्शूद्रवर्णायचाकरोत्। कारुवृत्तिकराः सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः॥ द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे। तदा प्रसन्नो भगवान् कण्वो वेदविदांवरः॥ तेषां चकार राजानं राजपुत्रपुरं ददौ।

देवी सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि ने मिश्र देश में जाकर १० हजार म्लेच्छों को शुद्ध किया और उनको संस्कृत पढाकर भारत वर्ष में लाये और उन मे से २००० को वैश्य बनाया इसी मे आगे लिखा है —

> मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेन सुशासिताः। संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागता॥ शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्।

इत्यादि अर्थात मिश्रदेश में उत्पन्न म्लेच्छ शुद्ध होकर तथा उत्तम वेद पढकर व शिखा

सूत्र धारण करके ब्राह्मणपद को प्राप्त हो गये। आगे फिर इसी अध्याय में कथा आती है कि वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्रीकृष्ण चैतन्य देव के प्रधान शिष्य स्वामी रामानन्दजी आचार्य निम्बादितजी श्री विष्णुस्वामीजी तथा आचार्य वाणीभूषण आदि सात आचार्योंने हरिद्वार, प्रयाग, काशी, अयोध्या, और कांची आदि प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंमें जाकर लाखों म्लेच्छों को पवित्र वैष्णव धर्म का उपदेश देकर हिन्दू धर्ममे प्रविष्ट किया। जिसे सदेह हो वह भविष्य पुराण पढ़कर या विद्वानों से सुनकर अपने संदेहको निवृत्त करले। देवल मुनिने तो अपने धर्मशास्त्र मे गोहत्यारे, म्लेच्छों की झूंट न खाने वाले की भी शुद्धि का विधान लिखा है, यथा—

बलाद्दासीकृतो म्लेच्छैश्चांडालाद्यैश्च दस्युभिः। अशुभं कारितं कर्म गवादिप्राणिहिंसनम्। उच्छिष्टं मार्जनं चैव तथा तस्यैव भक्षणम्। तत्स्त्रीणां च तथा संगस्ताभिश्च सहभोजनम्॥ इत्यादि॥

"रणवीर प्रायश्चित्त" में अनेक प्रमाण लिखे हैं। अर्थात् म्लेच्छ चाण्डालादि तथा डाकुओं द्वारा जो जबर्दस्ती दास बनाया गया हो तथा अशुभ कर्म गो आदि पवित्र प्राणियों की हिंसा आदि जिससे जबर्दस्ती कराई गई हो अथवा जिससे झूंठे बर्तन मंजवाये गये हों या जिसे झूंठा खिलाया गया हो तथा जिसने उनकी स्त्रियों का संग या उनके साथ भोजन किया हो तो उसकी शुद्धि कृच्छसन्तापन व्रत से होती है। उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों के विद्यमान होते हुए भी हम रूढि के गुलाम होने के कारण शुद्धि करने को बुरा मानते हैं। इसका कारण यह है कि एक समय आर्यजाति के दुर्भाग्य से ऐसा आया जब कि भारत से विभिन्न देशों में उपदेशक ब्राह्मणों का अभाव होगया, और भारत से ब्राह्मण उन देशों तक पहुंच न सके, जो उनको धर्म कर्म की शिक्षा देकर आर्यधर्म में दृढ रखते। अतः उस समय शनैः शनैः आर्यधर्म की बहुतसी शाखायें अज्ञान से तथा अपना कर्म त्याग देने से होगई। जैसा कि महाभारत शांतिपर्व राजप्रकरण में स्पष्ट रूप से वर्णन आता है। ऐसा ही मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक ४३-४४ में विधान पाया जाता है।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥ पौंड्काश्चोड्रद्रविडाः कम्बोजा यवनाः शकाः। पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदा खशाः॥

अर्थात निम्नलिखित तमाम क्षत्रिय जातियां कर्म के त्याग देने से और यज्ञ अध्ययन करने और स्ववर्णानुकूलप्राय श्चित्तादि कार्यों के लिये ब्राह्मणों के न मिलने से धीरे धीरे म्लेच्छता को प्राप्त होगई। जैसे कि पौंड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात,

दरद, खश आदि आदि। ज्योंही इन आर्यों ने ब्राह्मणों के अभाव से अपना धर्म कर्म का परित्याग किया तथा सर्वदेशीय भाषा संस्कृत का पठन पाठन बन्द किया तब इनकी अनेक शाखायें जातियों के रूप में परिवर्तित होगई और आर्य लोग इनको म्लेच्छ नाम से पुकारने लगे। क्योंकि उस समय संस्कृतविभिन्न भाषाभाषियों को आर्य लोग म्लेच्छ कहते थे। कुछ समय के उपरान्त ब्राह्मणों ने अन्य देशों में जाकर इनमें से बहुतसी जातियों को संस्कृत भाषा पढ़ाकर पुनः आर्यधर्म मे प्रविष्ट किया और जिस समय ये जातियां भारतवर्ष मे आक्रमण करने या अन्य किसी उद्देश्यसे आईं, आर्यों ने इन्हें वैदिक सभ्यता की शिक्षा देकर हिन्दूधर्म में मिला लिया। जिनमें से आज तक बहुतसी जातियां उसी क्रम से प्रसिद्ध है। और हिन्दुओं का उनके साथ खान पान का सम्बन्ध उसी प्रकार है। जैसा कि एक आर्य का आर्य के साथ होना चाहिये।

पुराणों में भारतवर्ष की सीमा आधुनिक अंग्रेजी सर्कार द्वारा निर्धारित सीमा नहीं है। भारतवर्ष की प्राचीन सीमा के लिये पातञ्जलिके महाभाष्य के "के पुनःआर्यावर्तः" आदि प्रमाणों से तथा वायुपुराण और मत्स्यपुराण से पता लगेगा कि भारतवर्ष के पूर्व में East sea (पूर्व समुद्र) पश्चिम मे अरब प्रदेश और दक्षिण में लंका और उत्तर में हिमालय लिखा है। इसी अध्याय में आगे चलकर वर्णन आता है कि जिस समय स्वयं भगवान् बुद्ध की शिक्षा के विपरीत १००००००००( दस करोड)मनुष्यों ने वैदिक सभ्यता का परित्याग कर दिया था। और वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर आर्य धर्म के विरुद्ध आचरण करने लगे थे तब उस समय जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी ने अग्निवंशज क्षत्रिय राजाओं की सहायता से उन्हे केवल शब्दध्वनि से ही शुद्ध करके पुन. आर्यधर्म में सम्मलित किया था। और वैदिक वर्णानुकूल संस्कारों से संस्कृत किया था। शक, यवन आदि जातियां जो किसी समय अज्ञानवशात् आर्यजाति से पृथक होगई थीं, और जिनके आचार व्यवहार आदि मे भी महान् अन्तर आगया था परंतु जिस समय भारतवर्ष में वे आई और अपने प्राचीन धर्म का प्रभाव उनकी आत्माओं पर पड़ा तब आर्यजाति ने उनको पुनः हिन्दूधर्म मे प्रविष्ट करके क्षत्रिय आदि वर्णों में मिला लिया। पुराणों में इस विषय का वर्णन विस्तारपूर्वक किया हुआ है। पौराणिक उदाहरणों को यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी वर्त्तमान समय में विशाल खंडहरों को खोदने से जो प्राचीन शिलालेख भूगर्भ से निकाले जा रहे हैं उनके आधार पर यह पूर्ण रूप से सिद्ध होचुका है कि आर्यजाति ने भारतमें आई हुई अन्य जातियों को अपनाया था।

( क्रमशः